पंचायतों की कार्यकुशलता सुधारने के प्रयास जरूरी

–नरेश चंद्र सक्सेना

रिपोर्टों आदि को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि जनता को अधिकार–संपन्न बनाने में कामयाबी में चार बातों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है: पारदर्शिता, सहभागिता, समावेशन और स्वामित्व की भावना। अगर किसी समुदाय के लोग यह नहीं समझ पाते कि निर्णय किस तरह से लिए जाते हैं या उन्हें इस बात का अहसास नहीं होता कि किस तरह दूसरे लोग कायदे–कानूनों का पालन कर रहे हैं, तो उन्हें लोगों के साथ समूह में कार्य करने का कोई प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। पंचायतें खुली बैठकों के आयोजन, बैठकों की कार्रवाई को जनता के साथ साझा करके और नियमों का पालन न करने वालों या अपना टैक्स न चुकाने वालों के नाम सार्वजनिक रूप से उजागर करके पारदर्शिता बढ़ा सकती हैं।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि कुछ ग्राम पंचायतों द्वारा किए गए शानदार कार्यों के बावजूद पंचायतों के माध्यम से सरकारी कार्यक्रमों पर अमल से गांवों में कुछ ही लोगों को फायदा हुआ है। इसका फायदा उठाने वाले अक्सर स्थानीय प्रभावशाली जातियों के लोग हैं और इनसे गरीबों तथा समाज के अन्य उपेक्षित वर्गों के लोगों का सशक्तीकरण नहीं हो पाया है। पंचायतों के नेता आमतौर पर असमानता पर आधारित ग्रामीण समाज में बदलाव की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का पूरा फायदा नहीं उठा सके हैं। पंचायतें कमोबेश 'राजनीतिक' संगठनों के तौर पर काम कर रही हैं; वे सही अर्थों में स्वशासन की संस्थाओं के तौर पर कार्य नहीं कर पा रही हैं। अधिकतर समय वे राज्य सरकारों/भारत सरकार के कार्यक्रमों के निष्पादन में मददगार के रूप में कार्य कर रही हैं। योजना आयोग के मूल्यांकन (2001) से पता चलता है कि कुछ ही स्थानों में ग्रामसभाओं की बैठकें नियमित रूप से आयोजित की गईं। ज्यादातर मामलों में इस तरह की बैठकों में सदस्यों की भागीदारी बहुत कम थी। ग्रामसभाओं को सशक्त बना कर और पंचायतों पर उनके नियंत्रण को मजबूत करके पारदर्शिता की दिशा में एक जोरदार पहल की जा सकती थी। इससे गरीबों और समाज के उपेक्षित लोगों को भी विकास में सहभागी बनाया जा सकता था। मगर ज्यादातर राज्यों के कानूनों और नीतियों में न तो ग्रामसभाओं के अधिकारों व शक्तियों का जिक्र किया गया है और न इन संगठनों के कार्य संचालन की कोई प्रक्रिया निर्धारित की गई है।

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में 2015 के ग्राम प्रधान चुनावों के अध्ययन से पता चला है कि ग्राम पंचायत के मुखिया के चुनाव

प्रचार में औसतन 5 से 6 लाख रुपये तक खर्च किए गए। लेकिन चुनाव जीतने वाले इस खर्च का करीब दस गुना सरकारी कार्यक्रमों के खर्च में से कटौती करके आसानी से वसूल लेते हैं। अध्ययन में एक ग्रामीण नेता का हवाला दिया गया है जिसने कहा है कि 'आबंटित धनराशि में से करीब 75 प्रतिशत तो पंचायत सचिव, जूनियर इंजीनियर, ब्लॉक व जिला पंचायत स्तर पर कर्मचारियों को कमीशन देने में चला जाता है और बाकी 25 प्रतिशत को विकास कार्यों में खर्च किया जाता है।' अगर कमीशन का भुगतान नहीं किया जाता तो हम ब्लॉक कार्यालय और जिला पंचायत कार्यालय के चक्कर काटते रह जाएंगे और हमारी फाइलें कभी मंजूर नहीं होंगी। अगर कोई आदमी ईमानदार है तो उसे काम करने ही नहीं दिया जाएगा। परिवार और समाज उसे अस्वीकार कर देंगे। (मुकर्जी 2018)।

यहां तक कि पश्चिम बंगाल में भी, जहां ग्रामीण समाज के निचले और मध्यम स्तर के बहुत से लोग ग्राम पंचायतों में शक्तिशाली पदों पर आसीन होने में कामयाब रहे हैं, वहां भी जिन लोगों का किसी राजनीतिक दल से संबंध नहीं है, उन्हें फायदों से वंचित रखा जाता है। पंचायतों का बहुत अधिक राजनीतिकरण हो चुका है और पिछड़े हुए तबकों (अनुसूचित जातियों/जनजातियों) के सदस्यों की अपनी ही पार्टी में कोई पूछ नहीं है क्योंकि ज्यादातर नेता ऊंची जातियों से हैं। महिलाएं भी यह महसूस करती हैं कि उनकी भागीदारी को भी बढ़ावा नहीं दिया जाता (बनर्जी 2008)।

पंचायतों की कार्यकुशलता और उनकी सेवाएं प्रदान करने की प्रणाली को निम्नलिखित उपाय अपनाकर सुधारा जा सकता है:

सामाजिक क्षेत्र में भागीदारी : सभी स्तरों की पंचायतें आमतौर पर निर्माण से संबंधित कार्यक्रमों को लागू करने में व्यस्त रहती हैं जिनमें ठेकेदार और दिहाड़ी मजदूरों से काम कराया जाता है। इनमें गरीब की बराबरी के आधार पर भागीदारी की आवश्यकता नहीं होती, उल्टे सरपंच पर गरीबों की निर्भरता को बढ़ावा दिया जाता है। पंचायतों को शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वयंसहायता समूहों, पौष्टिक आहार, जलग्रहण क्षेत्र, चरागाह और वानिकी संबंधी कार्यक्रमों में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए क्योंकि इनमें लोगों को बराबरी के आधार पर भागीदारी निभाने और आम सहमति से कार्य करने का मौका मिलता है।

वित्तीय शक्तियों के उपयोग के लिए प्रोत्साहन : पंचायतें सरकारी खर्च पर बहुत ज्यादा निर्भर हैं (ज्यादातर मामलों में 95 प्रतिशत से ज्यादा)। यह पैसा कैसे इस्तेमाल किया जा रहा है, इस बारे में ठीक से लेखापरीक्षा नहीं की जाती। ये धनराशि पंचायतों की आमदनी का आसान विकल्प है और उन्हें स्थानीय–स्तर पर खुद राजस्व जुटाने से हतोत्साहित किया जाता है। जब तक पंचायत अपने आंतरिक संसाधन नहीं जुटाती और बाहर से धन प्राप्त करती रहती हैं, तो इस बात की बहुत कम ही संभावना है कि लोग पंचायतों के खर्च की सामाजिक लेखापरीक्षा की मांग करेंगे क्योंकि उन्हें कोई टैक्स देना नहीं पड़ता।

ग्राम–स्तर पर पंचायतों को जो महत्वपूर्ण अधिकार हस्तांतरित किया गया है, वह है संपत्ति, कारोबार, बाजार और मेलों पर कर लगाना और स्ट्रीट लाइट या सार्वजनिक शौचालयों आदि के लिए शुल्क वसूल करना। ग्रामीण लोगों में से बहुत कम को ग्राम पंचायतों के इस वित्तीय अधिकार की जानकारी है क्योंकि इसके बारे में कभी बताया ही नहीं गया। बहुत कम पंचायतें नए टैक्स लगाने के लिए अपनी वित्तीय शक्तियों का उपयोग करती हैं। पंचायतों के प्रमुख इस संबंध में जो तर्क देते हैं, वह यह है कि आप जिस जन–समुदाय के बीच रह रहे हैं उसी के सदस्यों पर टैक्स लगाना बड़ा मुश्किल है। इसलिए मौजूदा वित्तपोषण प्रणाली के बारे में पुनर्विचार करना जरूरी है।

उदाहरण के तौर पर तमिलनाडु में सरकारी मशीनरी के जरिए भूमि कर की वसूली की जाती है और उसमें से 85 प्रतिशत पंचायतों को दे दिया जाता है। अगर इस कर की वसूली की जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों को सौंप दी जाए तो इससे बड़ी किफायत होगी और पंचायतें वसूल की गई राशि में से 15 प्रतिशत सरकार को दे सकती हैं। आज पंचायतें कर लगाने और वसूलने से हिचकिचाती हैं क्योंकि उनके पास भारत सरकार से अनुदान प्राप्त करने का आसान विकल्प है। इसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए और स्थानीय निकायों को विकास के लिए स्थानीय रूप से संसाधन जुटाने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके बाद वे केंद्र/राज्य सरकारों से उतनी ही राशि अनुदान के रूप में ले सकते हैं। पंचायतें अपने वित्तीय संसाधनों के लिए जनसमुदाय पर जितना अधिक निर्भर होंगी, उतनी ही अधिक संभावना इस बात की है कि वे अपने दुर्लभ भौतिक संसाधनों का उपयोग मानव विकास को बढ़ावा देने में और गरीबी कम करने में कम कर पाएगी। बाहर से मिलने वाली धनराशि, जिसमें आंतरिक स्रोतों से धन जुटाने की कोई बाध्यता जुड़ी नहीं होती, पंचायतों को गैर–जिम्मेदार और भ्रष्ट बना देती हैं।

चौदहवें वित्त आयोग से अनुदान : चौदहवें वित्त आयोग ने अप्रैल 2015 से ग्रामीण स्थानीय निकायों को पांच साल के लिए 2 लाख करोड़ रुपये की अनुदान राशि वितरित करने की सिफारिश की है। हालांकि वित्त आयोग पहले भी स्थानीय निकायों को अनुदान देते रहे हैं, 14वें वित्त आयोग ने इसमें जबर्दस्त बढ़ोतरी की है। अनुदान राशि दो प्रकार की होगी: बुनियादी अनुदान और कार्यनिष्पादन आधारित अनुदान। अनुदान राशि (1) स्थानीय निकायों की प्राप्तियों और खर्च के बारे में लेखापरीक्षित विवरण के जरिए विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त होने पर उपलब्ध कराई जाएगी; और (2) स्थानीय निकायों को अपने राजस्व में सुधार करना होगा। कार्यनिष्पादन संबंधी अनुदान प्राप्त करने का हकदार बनने के लिए उन्हें ये शर्तें पूरी करनी होंगी। लेकिन बहुत से राज्य इसमें पिछड़

रहे हैं। पंचायतों को या तो स्थानीय रूप से राजस्व वसूल करने के लिए करों से संबंधित पर्याप्त जिम्मेदारियां नहीं सौंपी गई हैं, या फिर जहां इस तरह का अधिकार दिया भी गया है वहां उसका उपयोग नहीं किया जा रहा है। असम, बिहार, ओडिशा, पंजाब और राजस्थान पंचायतों के माध्यम से कोई कर न वसूले जाने की जानकारी दे रहे हैं। इन राज्यों पर कार्यनिष्पादन संबंधी 14वें वित्त आयोग के उदार अनुदान से हाथ धो बैठने का खतरा मंडरा रहा है। इसलिए क्षमता निर्माण के अंतर्गत पंचायतों को अपना राजस्व बढ़ाने के लिए सशक्त करने और अनुदान के उपयोग के बारे में समय–समय पर रिपोर्ट भेजने पर भी ध्यान देना चाहिए।

समय पर और विश्वसनीय लेखापरीक्षा : ग्राम पंचायतें अब बड़े खर्च करने लगी हैं। उनके लेखे–जोखे की स्थानीय निधि लेखा परीक्षकों से ऑडिट करा जाना जरूरी है। लेकिन इसमें कई परेशानियां हैं। पहला, पिछले वर्षों का बहुत–सा काम पूरा किया जाना है और कुछ मामलों में तो दस साल से भी अधिक समय से लेखापरीक्षा नहीं की गई है। दूसरा, उनकी रिपोर्टों की गुणवत्ता अत्यंत दयनीय है इसलिए इस तरह के ऑडिट की उपयोगिता संदिग्ध हो जाती है। प्रणाली में सुधार लाने के लिहाज से इसका प्रभाव मामूली या संभवतः नकारात्मक है। तीसरा, भ्रष्टाचार की शिकायतें भी मिली हैं और आम धारणा यही है कि ऑडिट रिपोर्ट पैसा देकर बनवाई जा सकती हैं। अंत में, निर्वाचित गैर–सरकारी पदाधिकारियों को उनकी रिपोर्टों में पाई गई कमियों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। केवल अधिकारियों की जवाबदेही तय की जा सकती है। इससे पंचायतों के गैर–सरकारी पदाधिकारी गैर–जिम्मेदाराना व्यवहार करने को प्रेरित होते हैं। ये गंभीर मसले हैं और पंचायतों की वित्तीय जवाबदेही में सुधार के लिए इन पर ध्यान देना जरूरी है। ये मसले आज इसलिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो गए हैं क्योंकि 14वें वित्त आयोग ने अनुदान प्राप्त करने के लिए कुछ शर्तें लगा दी हैं।

पंचायतों का वर्गीकरण हो : पंचायतों द्वारा किए जाने वाले कार्य की पत्रकारों के दल, सिविल सोसाइटी के सदस्यों, आसपास के जिलों के पंचायत नेताओं (जो अच्छा कार्य कर चुके हैं) और अन्य संबद्ध लोगों द्वारा कड़ी निगरानी की जानी चाहिए। उनकी रिपोर्टों के आधार पर पंचायतों का वर्गीकरण किया जाना चाहिए और उन्हें भविष्य में सभी धनराशि वर्गीकरण के आधार पर ही दी जानी चाहिए। वित्तीय प्रबंधन और लेखा परीक्षा प्रक्रिया को सुदृढ़ करने से स्थानीय निकायों, उनकी स्थायी समितियां और उनके प्रतिनिधियों की जनता और उसके साथ–साथ सरकार के प्रति जवाबदेही बढ़ेगी।

सूझबूझ से तैयार की गई विधि से पंचायतों के कार्यनिष्पादन का आकलन करना काफी हद तक संभव हो सकेगा। इससे यह भी तय किया जा सकेगा कि वे किस सीमा तक समावेशी और प्रतिभागितापूर्ण हैं। उत्तर प्रदेश में एक अध्ययन में 20 पंचायतों की रैंकिंग तय करने के लिए मानदंड तैयार किए गए। हैरानी की बात नहीं है जिन पंचायतों का अध्ययन किया गया (75 प्रतिशत) उनमें से अधिकतर 'असंतोषजनक' या 'बहुत असंतोषजनक' श्रेणी में वर्गीकृत की गईं। लेकिन दो को 'अच्छा' दर्जे में रखा गया जबकि तीन को 'बहुत अच्छे' दर्जे में वर्गीकृत किया गया। **यह बात ध्यान देने की है कि बेहतरीन प्रदर्शन करने वाली दो पंचायतों की मुखिया महिला सरपंच थीं।** (श्रीवास्तव, तारीख रहित)।

सामाजिक पूंजी में सुधार : भारत के राज्यों में कुछ बुनियादी सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताएं हैं। इसी तरह राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्नताएं देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण कर्नाटक के तटवर्ती इलाकों में महिलाओं का दर्जा अपेक्षाकृत ऊंचा है। वहां लड़कों और लड़कियों को लगभग एक समान स्तर की शिक्षा दी जाती है और महिलाओं को घर से बाहर

निकलने की आज़ादी है और उनमें आत्मविश्वास है। इसके विपरीत उत्तरी कर्नाटक में लड़कियों का शिक्षा का स्तर लड़कों से काफी नीचा है और महिलाएं घर से बाहर कम निकलती हैं। इस तरह उत्तर में कुल मिलाकर सामाजिक संपत्ति का स्तर निम्न है क्योंकि असमानताएं ज्यादा हैं और जातीय संघर्ष भी विद्यमान हैं।

कर्नाटक के प्रशासनिक तंत्र में सरकारी कार्यक्रमों की सफलता के बारे में आम धारणा यह है कि दक्षिण–पश्चिम कर्नाटक के जिलों, जैसे मैसूर और शिमोगा में कार्यक्रम आसानी से सफल हो जाते हैं जबकि राज्य के उत्तर–पूर्वी जिलों में आसानी से ऐसा नहीं होता। गरीबी के स्तर के अलावा कई प्रेक्षकों ने जो बात महसूस की है, वह है सामूहिक कार्रवाई की जबर्दस्त क्षमता जो मैसूर और शिमोगा जैसे जिलों में मौजूद है। यहां का जन समुदाय शिक्षकों और क्षेत्रीय स्तर के अन्य कर्मचारियों पर अपना कार्य ठीक से करने के लिए और अधिक दबाव बनाने में सफल रहा हैं। ग्रामीण क्षेत्रो में शिक्षा की उच्च गुणवत्ता हासिल करने में जन–समुदाय की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। बेहतर सामाजिक पूंजी के परिणामस्वरूप बच्चों की स्कूली शिक्षा में समुदाय की भागीदारी का स्तर बढ़ जाता है और ये लोग शिक्षक समुदाय के कार्य की निगरानी करते हुए उन पर दबाव बनाने का कार्य भी करने लगते हैं (डब्ल्यूएसपी 2001)।

पारदर्शिता को प्रोत्साहन : रिपोर्टों आदि को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि जनता को अधिकार–संपन्न बनाने में कामयाबी में चार बातों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैः पारदर्शिता, सहभागिता, समावेशन और स्वामित्व की भावना। अगर किसी समुदाय के लोग यह नहीं समझ पाते कि निर्णय किस तरह से लिए जाते हैं या उन्हें इस बात का अहसास नहीं होता कि किस तरह दूसरे लोग कायदे–कानूनों का पालन कर रहे हैं, तो उन्हें लोगों के साथ समूह में कार्य करने का कोई प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। पंचायतें खुली बैठकों के आयोजन, बैठकों की कार्रवाई को जनता के साथ साझा करके और नियमों का पालन न करने वालों या अपना टैक्स न चुकाने वालों के नाम सार्वजनिक रूप से उजागर करके पारदर्शिता बढ़ा सकती हैं।

उदाहरण के लिए थाइलैंड में बच्चों में कुपोषण की दर को सिर्फ दस साल के भीतर 50 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत करने में शानदार सफलता इसलिए मिली क्योंकि वहां गांवों में आयोजित किए जाने वाले मेलों में बच्चों का वजन दर्ज कराने के लिए हर महीने सभी माता–पिता का आना अनिवार्य कर दिया गया था। इससे वजन सही–सही लिया जाने लगा और परिवारों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिला। दूसरी ओर, भारत के कई राज्यों में पंचायतों के अंतर्गत कार्य करने वाले आंगनवाड़ी केंद्रों के कार्यकर्ताओं में सही–सही वजन दर्ज करने के लिए जन समुदाय की ओर से किसी तरह का दबाव नहीं है जिससे फर्जी जानकारी देकर कुपोषण की असलियत को छिपा दिया जाता है। उदाहरण के लिए झारखंड से भारत सरकार को प्राप्त हुए आंकड़ों के अनुसार 0 से 3 वर्ष के आयु वर्ग में अत्यधिक कुपोषित बच्चों की तादाद केवल 0.5 प्रतिशत थी जबकि यूनीसेफ के सर्वेक्षण (2014) में यह 16 प्रतिशत बताई गई थी। इस तरह ज़मीनी–स्तर पर कार्य करने वाले कर्मचारी पादर्शिता के अभाव और सही–सही जानकारी देने के बारे में ग्रामसभा की ओर से किसी भी तरह का दबाव न होने से जवाबदेही से साफ बच निकलते हैं।

प्रशासन में सुधार : इसके साथ ही पंचायतों को कारगर बनाने के लिए जिला और ब्लॉक स्तर के प्रशासन को भी कारगर बनाना होगा। यानी बेहतर जवाबदेही और कार्यनिष्पादन के लिए स्थानीय प्रशासन को पंचायतों के साथ मिलकर कार्य करना होगा और स्थानीय पंचायतों को सक्षम बनाना होगा। इस तरह सिविल सेवाओं में सुधार से जिला प्रशासनों को मजबूत करने के साथ–साथ पंचायतों को भी अधिकार संपन्न बनाना होगा। पेशेवर और जवाबदेह लोक प्रशासन की सामाजिक क्षेत्र को सुदृढ़ करने के साथ–साथ पंचायतों को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए सक्षम बनाने में कारगर भूमिका होगी। यही दो दायित्व उन्हें सौंपे गए हैं और इन्हें पूरा करके लोक प्रशासन अपनी उपयोगिता साबित कर सकता है।

जवाबदेही संबंधी महत्वपूर्ण प्रणालियां कायम करने के बाद प्रशासनिक और वित्तीय कामकाज के विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए ताकि विकेन्द्रीकरण से पक्षपात, भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार या जिम्मेदारी से बचने की प्रवृत्ति को बढ़ावा न मिले। विकेंद्रित नीति कितनी प्रभावशाली रहती है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह कितने अच्छे तरीके से लागू की जाती है। नियंत्रणों और संतुलनों के अभाव में वे लोग उन शक्तियों का दुरुपयोग कर सकते हैं जिन्हें विकेंद्रीकरण के जरिए ये शक्तियां सौंपी गई हैं। विकेन्द्रीकरण में एक आम कमी यह देखी गई है कि बिना पर्याप्त दिशानिर्देश दिए या ऑडिट का पर्याप्त इंतजाम किए बगैर अधिकार सौंप दिए जाते हैं। पारदर्शिता और सत्यनिष्ठा के साथ अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि ऑडिट और निगरानी की पर्याप्त व्यवस्था भी की जाए।

संदर्भ

बैनर्जी, पार्थसारथी (2008): द पार्टी एंड द पंचायत ऑफ वेस्ट बंगाल, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 14 जून

मुकर्जी सिद्धार्थ (2018) : द 2015 ग्राम प्रधान इलेक्शनस इन उत्तर प्रदेश : मनी, पॉवर एंड वायलंस, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जून 16

योजना आयोग (2001): मिडटर्म अप्रेसल ऑफ द 9 प्लॉन योजना आयोग, नई दिल्ली।

श्रीवास्तव, रवि एस। (तिथि रहित) : एंटी पावर्टी प्रोग्रामस इन उत्तर प्रदेश : एन एवल्युशन योजना आयोग देखिए :
http://planningcommission.nic.in/reports/sereport/ser/stdy_pvtyup.pdf

यूनीसेफ (2014) : रेपिड सर्वे ऑन चिल्ड्रन 2013–14, नई दिल्ली।

डब्ल्यूएसपी (2001): जल और स्वच्छता कार्यक्रम, विश्व बैंक दिल्ली।

वाय सम विलेज वॉटर एंड सेनिटेशन कमेटीज आर बेटर देन अदर्स : ए स्टडी ऑफ कर्नाटक एंड उत्तर प्रदेश (इंडिया)

(लेखक भारत सरकार के योजना आयोग में पूर्व सचिव रह चुके हैं, ग्रामीण विकास मंत्रालय और अल्पसंख्यक आयोग में भी सचिव के रूप में कार्य कर चुके हैं।)

ई–मेल : naresh.saxena@gmail.com